# कलकत्ता : रंग-त्रिमासा

□ कृष्णचन्द्र वर्मा

गत तीन माह से कलकत्ता का रंगकर्म दो रूपों में स्पष्ट रूप से उजागर हो गया है । व्यावसायिक और शौकिया मंच के अधिक गम्भीर और प्रयोगधर्मी मंच के रूप में । 'अनामिका' इस रंग प्रक्रिया में अपना अमूल्य योगदान दे रही है । इन तीन मासों में कलकत्ता की हिन्दी रंग संस्थाओं ने कई नाटक प्रस्तुत किए हैं, 'अनामिका' द्वारा 'गोदान' (मू. ले. प्रेमचन्द) नाट्य रूपान्तर डॉ. प्रतिभा अग्रवाल, निर्देशन रवि दवे; दुलारी बाई, लेखन निर्देशन, एवं संगीत मणि मधुकर, 'देना पावना (मू. ले. शरत चन्द्र) अनुवाद प्रतिभा अग्रवाल हैं । संस्था 'अदाकार' द्वारा 'छुट्टी-छुट्टी' से समरेस बसु, निर्देशक कृष्णकुमार, 'प्रेमदुहाई' ले. वसन्त कानेटकर. निर्देशक कृष्णकुमार 'संस्था' कलाभवन द्वारा समुराम लेखक शैलेष गुहा, निर्देशन विजय चटर्जी, कला भारती द्वारा कायाकल्प निर्देशन सुबानघोष संस्था 'अनामिका' द्वारा एक मशीन जवानी की, ले संतोष नारायण नौटियाल, निर्देशक गोविन्द पौद्धार हैं । संस्था चांवकि संप्रदाय द्वारा 'चिन्दियों की एक झालर' ले. अमृतराम निर्देशक रवि याज्ञिक कलासंस्था कला संगीत मंदिर द्वारा 'टूटे सपने', ले. रेवती शरण शर्मा, निर्देशक बद्री प्रसाद तिवारी । इसी प्रकार बंगला नाट्य संस्थाओं द्वारा भी गत तीन माह में नाट्य प्रस्तुति इस प्रकार रही 'संस्था' कवच कुण्डल' द्वारा 'चलो सागर', ले. नि. विजन भट्टाचार्य, संस्था 'नान्दीकार' द्वारा 'भोला मानुष' नि. अजितेश बैनर्जी तथा 'सौदा गरेर नौका' ले. अजितेश बनर्जी, निर्देशक राधारमण तपदर 'संस्था' थियेटर कम्यून द्वारा मूच लेका' ले. अरुंधती देवो, संस्था 'शताब्दी' द्वारा प्रस्ताव ले. नि. बादल सरकार इसी प्रकार थियेटर यूनिट' द्वारा अतो टुक वासा' 'जर्मन से अनुवादित' अनुवाद निहार भट्टाचार्य, नि. शेखर चटर्जी, 'बहुरूपी द्वारा' मेदिन बंग लक्ष्मी बांके, (मू. ले. अन्टोन शेखर रूपान्तर अजित गांगुली नि. तृप्ति मित्र, 'मोहन बागानेर भेदे' द्वारा 'इदानिम' लेखक नारायन घोष, 'नि. गौरीशकर चौधुरी सस्था' सर्जना, द्वारा 'सारा रात्तिर' ले. बादल सरकार नि. शिवकुमार झुनझुनवाला, हिन्दी नाटकों के बंगला अनुवाद और रूपान्तर इस प्रकार हुए हैं : थियेटर कम्यून द्वारा मुन्शी प्रेमचन्द्र की कहानी 'कफन का बंगला' रूपान्तर 'दान का सागर' के नाम से अभिनेता नील कान्त सेन गुप्त के द्वारा किया गया ।

वस्तुतः गत तीन मासों में कलकत्ता में कई नाटक हुए हैं, साथ ही कई नाटकों के विभिन्न प्रेक्षागृहों में नियमित प्रदर्शन हो रहे हैं । वस्तुतः यह अपने आप में एक सफल प्रयास है ।

⊙ ⊙



# मेले से मेले तक

## ग्वालियर का हिंदी रंग मंच

विमल किशोर

ग्वालियर का हिन्दी रंग मंच बड़ा उपेक्षित और पिछड़ा हुआ भाग जाता रहा था । यहां तक कि रंग कर्मियों के अथक परिश्रम के बावजूद हिंदी रंगमंच पहले कभी पर्याप्त प्रेक्षक जुटा नहीं पाया और ऐसी स्थिति में यदि किसी संस्था ने टिकिट से शो करने का प्रयत्न किया भी तो लोगों ने इसका उपहास किया ।

इसके विपरीत नगर का मराठी रंगमंच काफी सशक्त और चर्चित रहा है । उसके पास बहुत ही सजग और अनुशासित प्रेक्षक वर्ग भी है ।

लेकिन तीन वर्ष पूर्व जब से यहां म. प्र. कला परिषद के सहयोग से कला मंदिर द्वारा जो रंग शिविर का आयोजन हुआ जिसमें दिल्ली के विख्यात नाट्य निर्देशक बृजमोहन शाह के निर्देशन में 'ह्य बदन' और 'तुगलक' नाटक तैयार और प्रस्तुत हुए थे, के बाद तो जैसे हिंदी क्षेत्र में नाटकों के लिये प्रति स्पर्धा सी चल पड़ी ।

इस प्रतिस्पर्धा का लाभ यह हुआ कि जहां मराठी जैसा हिन्दी में किसी एक संस्था का एकाधिकार नहीं रह पाया वहीं नाटक के विभिन्न पहलुओं की ओर भी नाट्य संस्थाओं का ध्यान आकर्षित हुआ । उन्होंने कई प्रयोग धर्मी नाटक प्रस्तुत किये । हास्य के क्षेत्र की ओर भी इसी दौरान ध्यान गया और संभवत सब से पहला हास्य नाटक प्रस्तुत किया हिंदी क्षेत्र की पुरानी नाट्य संस्था 'कला मंदिर' ने 1976 में मेला रंग मंच पर ।

नाटक का नाम था—'युवा अजब बूढ़े गजब' नाटक के निर्देशक थे डा. विजय बापट । अब तक हिन्दी रंगमंच प्रेक्षक जुटाने में समर्थ हो गया था और अब नाटकों के टिकिट धड़ल्लों से निकलने लगे थे और प्रेक्षागृह ठसा ठस भरे होने लगे थे ।

हिन्दी मंच पर दिसम्बर में एक प्रहसन और आया नटराज कला केन्द्र द्वारा 'श्रीमती जी' के नाम से विमल घटक के निर्देशन में ।

हास्य नाटकों में एक यह तो गुंजाइश रहती है कि नाटक के दोष बड़ी आसानी से छुप जाते हैं ।

इस नाटक के साथ ही पिछले मेले में जो हिन्दी मंच पर हास्य का दौर शुरू हुआ था वह मेले के ठीक पहले इस वर्ष अर्थात 76 के दिसम्बर में पूरा हुआ । पर इससे पहले रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप ने 'नदी प्यासी थी' के रूप में एक सशक्त गभीर रचना दी । ग्वालियर के हिन्दी रंग मंच पर इसका विशेष स्थान माना जायगा प्रभात गांगुली ने अपने निर्देशन का चमत्कार इसमें बखूबी दिखाया ।

मेले में अ. भा. सांस्कृतिक समारोह के पहले डा. कमल वशिष्ठ ने 'रंगालय' के तत्वावधान में 'भगवद्ज्जुकियम' और 'पांचाली सुनो' दो लघु नाटक और प्रस्तुत कर अपनी कुशलता का परिचय दिया । और इस बार मेला रंग मंच पर कलामदिर ने अपने सांस्कृतिक समारोह में प्रस्तुत किया—'चिराग जल उठा' इसके निर्देशक द्वय थे—वीरेंद्र पचौरी और आनन्द गुप्ता ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ग्वालियर का हिन्दी रंग मं॰ क्रमशः उस ओर बढ़ रहा है पूरे आत्म-विश्वास के साथ कि जहां से वह दूसरों को चुनौती द सके । वर्ष 76 इस दृष्टि से उस ओर एक कदम ही कहा जायगा भले ही इस वर्ष के अधिकांश नाटक चर्चित न हो पाये हों ।

इस दौरान रंग कर्मियों में वीरेंद्र पचौरी, आनन्द गुप्ता, रमेश उपाध्याय, विजय मोडक अनन्त सबनिस, जया खाण्डेकर, रेखा खाण्डेकर, वन्दना दुबे, शालिनी कोठारी, श्रीमती राधिका मोहन, विजय दलवी, अशोक अग्रवाल, मधु शिरालकर, अँजली पागनीस श्रीमती वीणा पाटणकर, नन्दलाल दयानी, उदय शहाणे, अशोक बुलानी आदि कुछ अच्छे नाम उभर कर सामने आये हैं । जिनसे रंग मँच को काफी आशायें हैं ।

महिला रंग कर्मियों में जया खांडेकर काफी आत्म विश्वास के साथ जमी हैं । और निर्देशकों की भीड़ में यदि प्रभात गांगुली को शामिल न करें तो जो नाम उभरते हैं वे हैं डॉ. कमल वशिष्ठ, डॉ. विजय बापट आदि । पर हिन्दी निर्देशकों में एक कमी है—ध्यान को केन्द्रित करने की । यदि यह हो जाय तो थमाव और जमाव निर्देशन में आ जाय ।

और मंच सज्जा में विश्वमित्र वास्वानी ने अपनी प्रतिष्ठा जमाई है । बस जरूरत है हिन्दी रंग मंच को जन समस्याओं के नजदीक आने की । देखें कब इधर ध्यान आता है ।



सो—'युवा अजब बूढ़े गजब' ने ठसा ठस दर्शकों को लोटपोट कर दिया । नाटक का उद्देश्य यही था और जिस ढंग से इस उद्देश्य की प्राप्ति की गई वह आलोचना का पात्र नहीं ।

नाटक में द्विअर्थी शब्द 'वो' के प्रयोग को (मेरा वो जो आगे लटका रहता था पीछे कैसे चला गया ... चश्मा) अश्लीलता की संज्ञा दी गई ।

नाटक की इस अश्लीलता की चर्चा मार्च 76 में म. प्र. कला परिषद के सहयोग से कला मंदिर द्वारा आयोजित अ. भा. नाट्य संगोष्ठी में भी जम कर हुई और सवाल उठाया गया कि हास्य या अन्य बहानों से स्वस्थ हिन्दी नाटक में फिल्मी अश्लीलता को ठूंसने का प्रयत्न तो नहीं किया जा रहा है ।

इस संगोष्ठी में बाहर से भाग लेने आये थे प्रसिद्ध रंग कर्मी एवं नाट्य समीक्षक श्री नेमीचन्द जैन, 'पराग' के संपादक श्री कन्हैयालाल नंदन और नाटककार स्व. मोहन राकेश की पत्नी श्रीमती अनीता राकेश ।

संगोष्ठी में अश्लीलता के संदर्भ में दिल्ली के पंजाबी रंगमंग की विशेष चर्चा रही पर यह निरूपित किया गया कि कोई भी बात अपने संदर्भ में ही श्लील या अश्लील होती है ।

बहरहाल, हिंदी रंगमंच में एक नयादौर तो शुरू हुआ ही और प्रेक्षकों की संख्या बढ़ने लगी । हिन्दी रंगमंच की बढ़ती लोकप्रियता से प्रभावित होकर मराठी की एक प्रसिद्ध नाट्य संस्था आर्टिस्ट कम्बाइन ने, मोहन राकेश के—'आधे अधूरे' को हिन्दी में मंचित किया ।

बसत परांजपे द्वारा निर्देशित इस नाटक ने यह सिद्ध कर दिया कि मराठी वाले हिंदी मंच पर अच्छा दखल रखते हैं ।

इसी बीच कला मंदिर ने 'किसी एक फूल का नाम लो' नामक नाटक का मचन डा. कमल वशिष्ठ के निर्देशन मे किया ।

इसके बाद गर्मियों के दिनों में पहले के समान कला मन्दिर द्वारा पुनः रंग शिविर का आयोजन हुआ जिसमें दिल्ली से इस बार बलराज पण्डित आये और उनके निर्देशन में कला मंदिर ने एक बड़ा नाटक—'बल्लभपुर की रूप कथा तथा दो लघु नाटक 'भगवद्ज्जुकियम' तथा दूत्वाक्यम् हिन्दी में मंचित किये ।

भगवद्ज्जुकियम तो संस्कृत हास्य नाटिका थी ही— 'बल्लभपुर की रूप कथा' ने भी हास्य का पुट दिया । दूसरी नाटिका जो महाभारत की कथा से सबधित थी, पर गत रंग शिविर ने 'तुगलक' और ह्य बदन' जो प्रभाव छोड़ गये, वह ये नहीं छोड़ पाये ।

अगस्त में आर्टिस्ट कम्बाइन ने पुनः 'एक जिद्दी लड़की' नाटक हिन्दी में प्रस्तुत किया । मराठी के इस नाटक के अनुवादक डॉ. विजय बापट ने ही इसे निर्देशित भी किया । मजे हुए कलाकारों ने नाटक को प्रतिष्ठा दिलाई ।

इसी माह नाट्यायन के सहयोग से अनिकेत ने दो नाटक प्रस्तुत किये डॉ. कमल वशिष्ठ के निर्देशन में— 'व्यक्तिगत' और अमरीक चावला के निर्देशन में— 'चर्चा गली गली' ।

'व्यक्तिगत' जहां प्रयोग धर्मी गंभीर नाटक था वहीं 'चर्चा गली गली' हिन्दी मंच पर एक और हास्य नाटिका । पहले ने जहां अपना स्थान बनाया वहीं दूसरा कम आकर्षित कर पाया ।

इस बीच एक बिलकुल ही ही नई संस्था दूसरी 'रग शिल्प ग्वालियर' जिसने अपने आपको प्रयोग धर्मी नाट्य संस्था बताया और पुरुषोत्तम अग्रवाल के निर्देशन में प्रस्तुत किया 'बाकी इतिहास' । सस्था नई, रंग कर्मी नये, और निर्देशक नये तो सचमुच ही यह प्रयोग धर्मी ही सिद्ध हुई । पर एक साहस तो था ही ।

# वहाँ थियेटर का कोई ट्रेडीशन नहीं है

## (पाकिस्तानी थियेटर पर फैज अहमद फैज से बातचीत)

जयदेव तनेजा

श्री जयदेव जी तनेजा का यह लेख यथार्थ में मशहूर पाकिस्तानी शायर श्री फैज एहमद फैज और दिल्ली के नाट्य प्रेमियों के बीच पाकिस्तानी थियेटर पर हुई अनौपचारिक चर्चा की रिपोर्ट है। हमारे आसपास के मुल्कों में आखिर नाटक की स्थिति क्या है, रंगमंच वहाँ किन समस्याओं से ग्रस्त है व उनका सामना वहाँ के रंगकर्मी कैसे कर रहे हैं यह जानना हमारे रंगकर्मियों के लिए निश्चित ही हितकर होगा। पाकिस्तानी थियेटर की जानकारी इस दृष्टि से स्पष्टतः लाभदायक है।

---सम्पादक

पिछले दिनों श्रीराम सेन्टर फार आर्ट एण्ड कल्चर के निमन्त्रण पर उर्दू के मशहूर शायर फैज अहमद फैज और दिल्ली के नाट्य-प्रेमियों के बीच पाकिस्तानी थियेटर पर एक अनौपचारिक-लम्बी बातचीत हुई जिसमें फैज ने 1920 से लेकर आज तक के पाकिस्तानी (उर्दू ?) रंगमंच की व्यापक और विस्तृत जानकारी दी। उनके अनुसार 1920 से पहले कलकत्ता और बम्बई से मास्टर रहमत अली, मास्टर निसार, कज्जल बाई वगैरह करांची जैसे बड़े शहरों में आकर आगा हश्र के ड्रामे या शैक्सपियर के नाटकों के रूपान्तर किया करते थे। 'भीष्म पितामह', भक्त प्रहलाद, लैला मजनू, शीरी फरहाद, वगैरह उस वक्त के मशहूर ड्रामे थे। 1920 के आसपास सोशल ड्रामों का दौर आया। तवायफ (वैश्या) उस काल की मूल समस्या थी। हश्र का "आँख का नशा" उस वक्त का कामयाब ड्रामा था। 1930 में थियेटर में पैसा लगाने वाले लोग फिल्मों में चले गये और धीरे-धीरे यहाँ के फनकार भी फिल्मों ने खींच लिए। शुरू-शुरू में उस जमाने के लोकप्रिय नाटकों पर फिल्में भी बनाई गईं। पाकिस्तान में नाटक सिर्फ कालेजों तक ही सीमित रह गया। गवर्नमेंट कालेज लाहौर में नाटक की निरन्तरता कायम रही है। लाहौर के एक गर्ल्स-कालेज में भी काफी अरसे से नाटक होते आ रहे हैं। अमूमन वहाँ हर साल किसी न किसी अंग्रेजी नाटक

का अनुवाद/रूपांतर जरूर होता है। पंजाबी में नन्दा द्वारा लिखा गया "लिल्ली दा व्याह" गवर्नमेंट कालेज में सफलतापूर्वक खेला गया था।

1948-49 में लाहौर में आर्ट्स कौंसिल की स्थापना हुई, 200 सीटों का हॉल बनवाया गया और साल में एकाध बार नाटक भी होने लगे। शुरू में रेडियो के ड्रामे ही स्टेज पर भी किए गए और इम्तियाज अली 'ताज', रफी पीरजादा वगैरह के ड्रामों में "अखियां" काफी चर्चित नाटक रहा। 1959 में जेल से छूटने के बाद आर्ट कौंसिल फैज के सुपुर्द की गई। स्टेज पर लड़कियों की बड़ी समस्या थी। लिहाजा कौंसिल के फाउण्डर मैम्बरों ने इस दिशा में पहल की और ताज, फैज तथा हाशमी वगैरह ने अपनी लड़कियों को स्टेज पर उतारा। नाटक मशहूर होते गए मगर कलाकार चूंकि स्टूडेंट्स थे इसलिए नाटक ज्यादा दिनों तक नहीं चलाए जा सकते थे। इसके साथ-साथ दो हॉलों में भी नाटक होने लगे। कलाकारों को थोड़े बहुत पैसे दिए जाने लगे। ये सेमी-प्रोफेशनल नाट्य-दल थे और कामेडी फार्स तथा सामाजिक-व्यंग्य प्रधान नाटक ही अधिक करते थे। कभी-कभार कोई गम्भीर नाटक भी हो जाता था। फैज ने करांची की आर्ट कौंसिल को भी संभाला और नाटक एकेडमी की नींव डाली। पुराने जमाने की लाइन्स पर गुजराती थियेटर भी फिर शुरू हुआ, जिसमें सामाजिक नाटक खेले गए। पाकिस्तान में जलसों वाले आडीटोरियम तो थे मगर लाहौर के एक 'ओपन एअर थियेटर' को छोड़कर साजोसामान से सजा कोई नाटक हाल नहीं था। 5-7 साल पहले करांची में सही किस्म का हॉल बनवाया गया। मगर तब से सियासी माहौल में बदलाव और गड़बड़ी आने की वजह से कुछ शुरू नहीं हो सका।

पंजाबी थियेटर पर ऐतिहासिक या लोक कथाओं पर आधारित नाटक होते हैं : जैसे दुल्ला भट्टी, राजा फतह अली खान वगैरह। 'वार' को लेकर भी कई नये नाटक लिखे गए हैं। कुछेक नाटक अब हिन्दी में भी हुए है। हैदराबाद सिंध में भी आर्ट कौंसिल बन गई है।

पिछले दिनों सुना है कि देहातों में खुले में भी कुछ नाटक हुए और पिंडी की एक शौकिया नाटक मंडली ने रेलवे स्टेशन पर भी दो एक नाटक किए हैं। अनवर सज्जाद, सरमा साबाई और कुदसिया जैसे नौजवान लेखक वहां अच्छा लिख रहे हैं। इन बातों के अलावा पाकिस्तान में :——

1. आर्ट कौंसिल की प्रस्तुति पर कोई मनोरंजन कर नहीं है। बाकी सबको टैक्स देना पड़ता है।

2. पब्लिक परफोरमैंस के लिए नाटयालेख को पहले सैंसर करवाना पड़ता है।

3. कौंसिल के नाटकों में स्टेट की तरफ से कोई दखलन्दाजी नहीं हुई—शायद वहां थियेटर को उतनी एहमियत ही नहीं दी गई।

4. दर्शकों की कोई कमी नहीं है—व्यावसायिक कलाकारों के अभाव में कुछ दिनों के बाद मजबूरन नाटक बन्द करना पड़ता है।

5. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय या फिल्म और टी. वी. इन्स्टीच्यूट जैसी कोई प्रशिक्षण संस्थान, एकेडमी या स्कूल भी अभी वहां नहीं है। हां, योजनाएं कई हैं।

6. कोई नाट्य-पत्र/पत्रिका भी नहीं है, मगर सामान्य अखबारों/रिसालों में थियेटर, फिल्म, टी. वी. वगैरह पर साप्ताहिक कालम होते हैं।

7. म्यूजिक और शायरी की परम्परा तो रही है, मगर थियेटर का कोई ट्रेडीशन न होने की वजह से ही वहां रंगमंच का समुचित विकास नहीं हो सका है।

हिन्दुस्तानी थियेटर के नाम पर फैज ने रंजीतकपूर के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली द्वारा प्रस्तुत 'बेगम का तकिया' ही देखा है जो फैज को बहुत पसन्द आया और उन्हीं के शब्दों में बेशक एक "कामयाब" चीज है।



सारी बातचीत के दरम्यान, फैज लगातार पांच सौ पचपन के सिग्रेट पीते रहे और श्रीराम केन्द्र जैसे भव्य भारतीय नाट्य-भवनों को 'ऐय्याशी' करार देकर अपने अफसोस, क्रोध या ईर्ष्या या पता नहीं किस मनोभाव को व्यक्त करते रहे? आखिर में उन्होंने हम लोगों की फरमाइश पर 'ईरानी तुलबा के नाम', आ जाओ, एफ्रीका', मुझसे पहले सी मुहब्बत.........' 'चन्द रोज और मेरी जान,' तथा 'शीशों का मसीहा' जैसी अपनी कुछ चुनी हुई नई-पुरानी मगर बेमिसाल रचनाएँ सुनाई और जाते-जाते सबका मन मोह लिया। बन्द कमरे से बाहर लान में आते हुए लगा जैसे मन में अनायास फैज की ये पंक्तियां गूंज उठी हों—

शाम के पेच–ओ–खम सितारों से
जीन : जीन : उतर रही है रात
यूं सबा पास से गुजरती है
जैसे कह दी किसी ने प्यार की बात।

पुनश्चः इस बातचीत के कई माह बाद पाकिस्तान के एक अन्य युवा कवि और कहानीकार (शायद नाटककार भी) अहमद हमेश से साक्षात्कार का संयोग हुआ और उन्होंने भी समकालीन पाकिस्तानी रंगमंच के विषय में लगभग यही बातें दुहराई तथा अवसर मिलने पर भारतवर्ष में कभी आकर एक 'अपनी मर्जी का नाटक' करने की तीव्र इच्छा या महत्वाकांक्षा व्यक्त की।

*

---

## टी. वी. नाटक—हमारे उनके

ये सर्वसामान्य है कि भारतीय टी. वी. पर सबसे अधिक लोकप्रिय वो कार्यक्रम हैं जो फिल्मों से सम्बन्धित हैं। कुछ समय से दर्शक नाटकों में भी रूचि लेने लगे हैं। लेकिन यदि ये सोचा जाय कि टी. वी. आम जनता के लिए है तो अभी हमारे हिन्दी नाटक ऐसे नहीं हैं जो जनमानस को आकर्षित कर सकें। कभी-कभी कुछ नाटक तो बेचारे सीधे-सादे दर्शक को समझ में ही नहीं आते। ऐसे नाटक बहुत कम हैं जिन्हें दर्शक रूचि से देखते हों।

ये भी देखने में आया है कि भारत के उन क्षेत्रों में जहां लाहौर टी. वी. भी देखा जा सकता है वहां पाकिस्तानी नाटक बहुत लोकप्रिय हैं। लोग भारतीय कार्यक्रमों की तुलना में पाकिस्तानी नाटक देखना अधिक पसन्द करते हैं। कारण यही है कि वहां के नाटक अधिक मनोरंजक एवं सुरूचिपूर्ण होते है और दर्शकगण उनका अधिक आनन्द लेते हैं। क्यों न दर्शकों की राय जानने और टी. वी. को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए उत्सुक 'श्री कमलेश्वर' पाकिस्तान की तुलना में हिन्दी नाटकों के कम लोकप्रिय होने के कारणों की जांच करें क्योंकि लोग लाहौर के नाटकों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। बेहतर होगा यदि दिल्ली के अलावा अन्य शहरों में हो रही नाट्य गतिविधियों का सर्वेक्षण किया जाये और वहां के सफल एवं अच्छे नाटकों को टी. वी. पर प्रदर्शित किया जाये। इससे जहां नई प्रतिभाओं को उभारने का मौका मिलेगा वहीं हो सकता है टी. वी. केन्द्र के महानुभावों को अच्छे नाटकों का चयन करने की सुविधा भी प्राप्त हो सके।

—कल्चरल टाइम्स